EDUPHORIA
An International Multidisciplinary Magazine

# दयानन्द सरस्वती के शैक्षिक विचारों की वर्तमान में प्रासंगिकता

The relevance of Dayanand Saraswati's educational ideas in the present times

डॉ. कामना शर्मा, सहायक प्रोफेसर, राजस्थान शिक्षा प्रशिक्षण विद्यापीठ शाहपुरा बाग जयपुर

Dr. Kamana Sharma, Assistant Professor, Rajasthan Shikshak Prashikshan Vidyapeeth Shahpura Bagh Jaipur

---

**Abstract (सार)**

यह शोधपत्र दयानंद सरस्वती के शैक्षिक विचारों का सम्यक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। प्राचीन काल से में अनेकानेक सिद्ध पुरुषों और युग पुरुषों का जन्म हुआ। जिन्होंने पवित्र भारत भूमि को अनेकों बुराइयों से मुक्त किया। स्वामी दयानंद सरस्वती जैसे सिद्ध पुरुषों की प्रबल प्रज्ञा और ज्ञान के प्रकाश ने भारत में अज्ञानता के अंधकार को दूर करते हुए विश्व कल्याण में अपना अभूतपुर्व योगदान दिया था। प्राचीन काल में जब तात्कालिक समाज में सुधार की महती आवश्यकता थी, उस समय स्वामी दयानंद सरस्वती ने शैक्षिक विचारों के द्वारा समाज को मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक, बौद्धिक, चारित्रिक विकास के अवसरों की उपलब्धता करवाई थी। स्वामी दयानंद सरस्वती के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं स्त्रियों सभी के लिए शिक्षा अनिवार्य थी । शिक्षा के द्वारा ही समाज की बुराइयों को दूर किया जा सकता था। शिक्षा के अभाव में कोई भी राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता है। वर्तमान शिक्षा पद्धति में छात्र के सीखने के लिए आवश्यक तत्व शिक्षक को ही माना गया है। शिक्षण, पुस्तकीय ज्ञान के अलावा स्वाभाविक ज्ञान, अनुभव आधारित ज्ञान द्वारा बालक की जिज्ञासा को शांत करते हुए उनका सशक्त विकास करता है। अतः वर्तमान शिक्षा प्रक्रिया में स्वामी दयानंद के विचार पूर्ण रूप से प्रासंगिक है, जिनको नई शिक्षा नीति के द्वारा वर्तमान में धरातल पर उतारने के लिए निरंतर हमारी शिक्षा प्रणाली कार्यरत है।

*शब्दकोष*: दयानन्द सरस्वती, शैक्षिक विचार, वैदिक शिक्षा, नैतिक शिक्षा, वैज्ञानिक चेष्टा, स्त्री-शिक्षा, आधुनिक शैक्षिक नीति।

**प्रस्तावना:**

प्राचीन काल से भारत में अनेकानेक सिद्ध पुरुषों और युग पुरुषों का जन्म हुआ ।जिन्होंने पवित्र भारत भूमि को अनेकों बुराइयों से मुक्त किया। उन्हीं युग निर्माताओं में से एक स्वामी दयानंद सरस्वती जैसे सिद्ध पुरुषों की प्रबल प्रज्ञा और ज्ञान के प्रकाश ने भारत में अज्ञानता के अंधकार को दूर करते हुए विश्व कल्याण में अपना अभूतपुर्व

योगदान दिया था। विश्व में भारत में ही सर्वप्रथम शिक्षा दर्शन का प्रादुर्भाव हुआ जिसने व्यक्ति के सर्वांगीण विकास को यथेष्ठ रूप में सिद्ध किया । भारत अपने इसी शिक्षा दर्शन के लिए विश्व गुरु के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। किंतु समय सदैव परिवर्तनशील होता है। भारत के प्रगतिशील शिक्षा दर्शन के सर्वोत्तम समय में भी परिवर्तन आया और विदेशी आक्रांताओं का आगमन भारत में हुआ। जिनके राजनीतिक कूटनीतिज्ञ के कारण हमें अज्ञानता और निर्धनता की बेडियो में जकड़ कर अनेकानेक बुराइयों एवं कुरीतियों को भारतीयों के जीवन में भर दिया गया। फ़लस्वरूप भारत विकासशील देशों की श्रेणी में गिना जाने लगा। किंतु इसी तिमिर काल में अनेक प्रखर सिद्ध पुरुष इस पावन भूमि पर अवतरित हुए। इन्होंने हमारे देश को कठिन कालक्रम से निकालकर वापस विश्व गुरु बनाने के प्रयास में प्रबल सहयोग दिया । स्वामी दयानंद सरस्वती ने समाज को सुधारने के लिए समाज में फैली कुरीतियों को दूर करने के लिए वैदिक शिक्षा को एक सशक्त माध्यम माना। उनके अनुसार वेद न केवल भारत अपितु विश्व की आधारशिला है। उन्होंने मूर्ति पूजा को वेदों के विरुद्ध बताया। बाल विवाह ,विधवा विवाह और छुआछूत को दूर करने हेतु समाज का आवाहन किया। जाति प्रथा, अशिक्षा, अस्पृश्यता जैसी कुरीतियों को मिटाने के लिए वेद और शास्त्रों का उपयोग कर शिक्षा की अलख जगाई। समाज की बुराइयों को मिटाने के लिए एक निर्भीक मार्ग में आर्य समाज की स्थापना की। जिसके द्वारा समाज को अपनी संस्कृति पर गर्व करने, वेदों का अनुसरण करने की प्रेरणा दी। साथ ही आर्य समाज के द्वारा पुन: “वेदों की ओर लोटो” का अवलंबन किया। स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियों में आध्यात्मिक गुणों का समावेश करती है, बालकों को शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक, बौद्धिक अवसर भी उपलब्ध करवाती है और वर्तमान की आवश्यकता अनुरूप विद्यार्थियों को व्यावसायिक अवसरों की उपलब्धता भी करवाती है।

दयानंद सरस्वती जी का जीवन परिचय: दयानन्द सरस्वती का जन्म 12 फरवरी 1824 को गुजरात के टंकार कस्बे में ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनका बचपन का नाम मूलशंकर था। इनके माता पिता समर्पित हिंदू थे। मूलशंकर बचपन से ही विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। दो वर्ष की आयु में ही इन्होंने गायत्री मंत्र का उच्चारण सीख लिया था। घर में पूजा-पाठ ,भक्ति का माहौल होने के कारण इनकी भगवान शिव के प्रति अगाध श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी। मूलशंकर को घर पर पिता द्वारा धर्मशास्त्र की शिक्षा दी गई। 14 वर्ष की आयु में मूल शंकर ने संस्कृत व्याकरण, सामवेद, यजुर्वेद का अध्ययन कर लिया था। बालक मूलशंकर ने ब्रह्मचर्य काल में ही भारत के उद्धार हेतु 21 वर्ष की आयु में गृहत्याग कर दिया था। उनकी मुलाकात कई ज्ञानी ऋषियों से हुई लेकिन जब वे स्वामी बिरजानंद से मिले तो वे अत्यंत प्रभावित हुए। स्वामी बिरजानंद प्राचीन विद्याओं के प्रसिद्ध विद्वान, शिक्षक और स्वतंत्र चिंतक थे। वे मूर्तिपूजा, कुसंस्कार और बहुदेववाद के विरोधी थे। उन्हीं से मूलशंकर को स्वामी दयानंद का नाम प्राप्त हुआ। स्वामी विरजानन्द जी के मार्गदर्शन और शिक्षाओं से स्वामी दयानंद ने सार्वजनिक रूप से उपदेश देना प्रारंभ किया और वैदिक धर्म का अधिकाधिक प्रसार किया। स्वामी दयानंद सरस्वती ने 10 अप्रैल 1875 को बम्बई में प्रथम आर्य समाज की स्थापना की।

वर्ष 1883 में एक षड्यंत्र के तहत स्वामी जी को जहर दिए जाने के कारण उनकी मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के बाद लोगों ने ज्ञान के सूर्य को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। उनके द्वारा सत्य की ओर ले जाया गया मार्ग समाज के लिए सदैव अविस्मरणीय रहेगा।

## शोध उद्देश्य

1. दयानंद सरस्वती के प्रमुख शैक्षिक विचारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।

2. आधुनिक शिक्षा व्यवस्था की चुनौतियों का विश्लेषण करना।

3.दयानंद सरस्वती के शिक्षा के मूल उद्देश्यों का आधुनिक शिक्षा प्रणाली से संबंध स्थापित करना।

4. दयानंद सरस्वती के विचारों की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उपयोगिता को स्पष्ट करना।

4. मूल्यपरक, राष्ट्रीय और सर्वांगीण शिक्षा के लिए उनके विचारों की प्रासंगिकता सिद्ध करना।

## दयानंद सरस्वती के शैक्षिक विचार

स्वामी दयानंद सरस्वती के अनुसार शिक्षा का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। उनके अनुसार संसार में जितने भी दान है, उन सभी में वेद विद्या दान अति श्रेष्ठ है। उनके शिक्षा संबंधित विचार “वैदिक परंपरा” के पोषक हैं -

गुरुकुल परंपरा स्वामी जी शिक्षण संस्थाओं को गुरुकुल प्रणाली के आधार पर संगठित करना चाहते थे। जहाँ विद्यार्थी आवासीय शिक्षण संस्थाओं में रहकर शिक्षा पूरी करें। गुरुकुलों में विद्यार्थियों के सामाजिक, आर्थिक स्तर के आधार पर कोई भी भेदभाव न किया जाए। गुरुकुल नगर या ग्राम से कम से कम पांच किलोमीटर दूर आवासीय शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की जानी चाहिए। गुरुकुल का पर्यावरण शुद्ध होना चाहिए। जहाँ अध्ययन-अध्यापन, खेलकूद, व्यायाम के अतिरिक्त भजन, कीर्तन, ध्यान की क्रियाएं भी संपन्न कराई जानी चाहिए। गुरुकुल में शिक्षा लेने पर गुरु का स्थान महत्वपूर्ण होता है। गुरु और शिष्य में एक उत्तराधिकार और स्वाभाविक प्रेम की भावना का विकास होता है। शिक्षा किसी स्वार्थवश ज्ञान बेचने का व्यवसाय नहीं, बल्कि संपूर्ण जीवन को निष्पाप बनाने का प्रयास करना है। गुरु के प्रति शिष्य की अगाध श्रद्धा होनी चाहिए। विद्यार्थियों की सात्विक प्रवृति का विकास एवं ब्रह्मचर्य पालन शिक्षा की अनिवार्य आवश्यकता है। शिक्षा का कार्य विद्वान और चरित्रवान व्यक्ति के हाथ में होना चाहिए।

शिक्षण पद्धति स्वामी दयानन्द जी ने शिक्षा को आजीवन और सतत चलायमान प्रक्रिया माना। उनकी दृष्टि में माता बालक की प्रथम गुरु होती है माता के चरित्र से शिशु का चरित्र निर्दिष्ट, प्रभावित और विनिर्मित होता है। उनके अनुसार बालक के तीन शिक्षक- माता, पिता और आचार्य होते हैं। इन तीनों को संयम से रहना चाहिए। आठ वर्ष की आयु प्राप्त करते ही बालक को पाठशाला भेज देना चाहिए। जहाँ उसे सम्यक उच्चारण का अभ्यास आरंभ से

ही कराया जाना चाहिए। सुन्दर उच्चारण सिखाने के साथ ही अक्सर मात्रा पद वाक्य आदि का मौखिक ज्ञान भी कराना चाहिए। साथ ही बालक में ग्राहय और अग्राह्य बोध को विकसित करना चाहते थे।

शिक्षा के उद्देश्य स्वामी जी की शिक्षा की संकल्पना के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य में विद्यमान अंतर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है शिक्षा के आध्यात्मिक उद्देश्यों के साथ-साथ स्वामी जी ने शारीरिक उद्देश्यों पर भी बल दिया उनके अनुसार शरीर ही समस्त उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन है और शारीरिक दुर्बलता पूर्णता की प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा है। स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा बालकों की शिक्षा में आचार विचार को परिष्कृत करने की आवश्यकता भी बताई।

मानसिक विकास के अंतर्गत स्वामी जी ने दो प्रकार का ज्ञान बताया - यथार्थ ज्ञान और सद्ज्ञान। स्वामी जी ने बताया कि जीवन को सुखमय बनाने के लिए सद्ज्ञान की आवश्यकता होती है। सद्ज्ञान पर ही जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति निर्भर है। उनके अनुसार बालक में आचार - विचार और व्यवहार की कुशलता, वैदिक संस्कृति का पुर्नरुत्थान करने की क्षमता, और सद्गुणों को व्यवहारिक रूप प्रदान करने की इच्छा जैसे समस्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए शारीरिक एवं मानसिक रूप से सुदृढ़ होना आवश्यक है।

शिक्षण विधियां स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अध्ययन अध्यापन में एकाग्र चितता को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया है। स्वामी जी द्वारा सन्ध्योपासना एवं भक्ति आदि के उपरांत शिक्षण प्रारंभ करने पर बल दिया गया है। स्वामी जी ने अधोलिखित शिक्षण विधियों को शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपयोग करना अनिवार्य बताया है- उपदेश विधि, व्याख्यान विधि, स्वाध्याय विधि, वाद विवाद विधि और प्रश्नोत्तर विधि। इनके अतिरिक्त स्वामी जी ने प्रश्नोत्तर शैली का पुनरुद्धार भी किया। अनेक ग्रंथों की रचना भी प्रायः इसी शैली में हुई। सत्यार्थ प्रकाश को इसी शैली के सर्वोत्तम उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। उपदेश में व्याख्यान बालकों को उचित अनुचित में अंतर बताता है। स्वामी जी दार्शनिक विषयों के प्रतिपादन के लिए दृष्टांत शैली का समावेश करते थे।

पाठ्यक्रम दयानंद सरस्वती के अनुसार शिक्षा योजना में उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु पाठ्यक्रम की व्यवस्था व्यापक स्तर पर होनी चाहिए। प्राचीन संस्कृति के प्रति अनुराग तथा अपनी संस्कृति की संरक्षा और संवर्धन पाठ्यक्रम का आधार होना चाहिए। पाठ्यक्रम का सबसे प्रमुख तत्व बालकों के शुद्ध उच्चारण पर ध्यान देना है। इस निमित्त पाणिनि का व्याकरण और ध्वनि सिद्धांत सम्मिलित है। पाठ्यक्रम विषयों में गणित, भूगोल, खगोल आदि पर भी समान ध्यान दिया जाना चाहिए। शिक्षा का कार्यकाल 25 वर्ष तक निर्धारित किया गया है। इस कार्यकाल में प्रथम पांच वर्ष तक की आयु में माता पिता को बालकों को अच्छी आदतों, अच्छे आचरण का समावेश करना चाहिए। इसमें अधिक समय खेलकूद में व्यतीत होना होगा। आठ वर्ष तक की आयु में शुद्ध ध्वनि और लेखन पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। इसके बाद का समय अर्थात् 11 वर्ष तक पाणिनि और पतंजलि के महाभाष्य पर ध्यान दिया जाना चाहिए। 15 वर्ष तक की आयु विभिन्न छंद, ग्रंथों के अध्ययन हेतु मानी गई है। इसके बाद धार्मिक ग्रंथ और षठदर्शनों की शिक्षा देनी चाहिये। 25 वर्ष तक के बालकों के लिए व्यावहारिक विषयों की आवश्यकता बताई गई है। जिसमें

धनुर्विद्या, सैन्य अभ्यास, अर्थव्यवस्था, शिल्प, कानून, और विज्ञान आदि का अध्ययन शामिल है। इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने अपने पाठ्यक्रम में सैद्धांतिक और व्यवहारिक विषयों का आवश्यकतानुसार समावेश किया।

शिक्षक एवं शिष्य स्वामी दयानन्द ने अध्यापकों में शास्त्रीय गुणों की संपन्नता आवश्यक मानी थी। स्वामी जी के अनुसार आचार्य वह है, जो विद्यार्थियों को अत्यंत प्रेम से धर्मयुक्त व्यवहार की शिक्षा प्रदान करें। उन्हें विद्वान बनाने के लिए तन, मन, धन से प्रयत्न करें। अपने विशिष्ट आचरण के साथ समस्त विद्या का विद्यार्थियों तक प्रेषण भी करें। अध्यापक का व्यक्तित्व प्रभावशाली, मृदु व्यवहार, विद्यानुराग, आध्यात्मिक शक्तियां से संपन्न निष्पक्ष आचरण और चारित्रिक एवं नैतिक दृढ़ता युक्त होना चाहिए। शिक्षक को सदैव छात्रों के कल्याण हेतु समर्पित रहना चाहिए।

स्वामी दयानन्द ने प्रत्येक वर्ण के विद्यार्थियों हेतु शिक्षा की व्यवस्था पर सहमति प्रकट की है। विद्यार्थी स्नान ध्यान के उपरांत आस्थापूर्वक अपने गुरु के पास स्थान ग्रहण करें और विद्यार्थी का चरण वैदिक मान्यताओं के अनुरूप हो। विद्यार्थी में ब्रह्मचारी, सुख त्यागी, कर्मठता, पुरुषार्थ सत्यनिष्ठा, आज्ञापालन, श्रद्धाशीलता, स्वाध्यायी, जिज्ञासु, विचारशीलता, सच्चरित्र एवं विद्यापरायणता के गुणों का समावेश होना आवश्यक है।

विद्या प्राप्ति में दोनों के बीच निकटता में स्पष्ट संबंध वांछित है दोनों को मध्य आत्मीय और व्यक्तिगत संबद्ध होंगे किंतु अध्ययन अध्यापन के संबंध में अध्यापक द्वारा कोई शिथिलता प्रकट नहीं की जाएगी। अथार्त उनके बीच का संबंध पिता पुत्र जैसी भावनाओं पर आधारित तथा विद्यार्थी के कल्याण निमित्त होगा। अध्यापक जो स्वयं ज्ञान और व्यवहार का आदर्श होगा वहीं विद्यार्थी में अच्छा ज्ञान प्रेषित करेगा।

अनुशासन और विद्यालय स्वरूप अनुशासन शिक्षा व्यवस्था का वह सुगंधित पुष्प हैं। जिसका प्रभाव न केवल वर्तमान विद्यार्थियों पर पड़ता है अपितु कई पीढ़ियों तक होता है। स्वामी दयानन्द ने विद्यार्थियों के लिए कठोर अनुशासन का आधार प्रदान किया है। कठोर अनुशासन में रखने का उत्तरदायित्व माता, पिता और शिक्षक का है। असंयमित व्यवहार पर विद्यार्थियों को उचित मार्ग पर लाने हेतु दंड की व्यवस्था होनी चाहिए। दंड व्यवस्था को ईर्ष्या और द्वेष से मुक्त रहना चाहिए। स्वामी दयानन्द ने लाड़ प्यार को दूषित और दृढ़ व्यवहार को अमृत माना है। दयानन्द ने बालकों की शिक्षा में पुरस्कार व दंड को दंड के सिद्धांत पर विशेष ध्यान दिया है।

विद्यालय स्वामी जी ने शिक्षा के उन्नयन के लिए राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था एवं राष्ट्रीय शिक्षा संस्थानों की स्थापना का प्रयास किया। शिक्षा संस्थाओं में आर्य समाज और वैदिक विद्यालय आते हैं। प्रारंभिक शिक्षा के लिए स्वामी जी पारिवारिक शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। आठ वर्ष के बाद बच्चों का उपनयन संस्कार हो और शिक्षा प्राप्ति हेतु उन्हें गुरुकुल भेज दिया जाए। गुरुकुल की स्थापना कोलाहल से परे और शहर से दूर शांत स्थान पर होनी चाहिए। बालक, बालिकाओं के लिए अलग-अलग विद्यालयों की स्थापना होनी चाहिए। दोनों के विद्यालयों में तीन मील की दूरी होनी चाहिए। विद्यालय का जीवन सादा, ब्रह्मचर्यपूर्ण, संयमित हो। स्वामी जी ने राष्ट्रीय शिक्षा के विकास के लिए राष्ट्रीय शिक्षा योजना तैयार की। हिंदी भाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने वाले विद्यालयों की स्थापना की।

स्त्री शिक्षा दयानंद सरस्वती द्वारा महिला सुधार हेतु अनेकानेक प्रयास किए गए। स्वामी जी ने स्त्री शिक्षा, बाल विवाह, सती प्रथा, अशिक्षा, दासप्रथा का घोर विरोध किया। स्वामी जी के अनुसार स्त्रियों का शिक्षित होना आवश्यक है। आठ वर्ष की होने के बाद बालिकाओं को विद्यालय में अनिवार्य रूप से प्रवेशित करना चाहिए। स्त्रियों को गणित, धर्मशास्त्र, व्याकरण, शिल्प, चिकित्साशास्त्र  आदि सभी की शिक्षा देना चाहिए। स्वामी जी के अनुसार जिस प्रकार सुशिक्षा प्राप्त युवक का विदुषी स्त्री से विवाह होना चाहिए। उसी प्रकार स्त्रियों को भी ब्रह्मचारिणी होकर युवती होने तक वेद आदि शास्त्रों को पढ़कर उत्तम शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और पूर्ण युवावस्था युक्त पुरुष से विवाह करना चाहिए। इसलिए स्त्रियों को भी ब्रह्मचारी होना ओर विद्या ग्रहण करना परमावश्यक है। स्त्रियों की शिक्षा के द्वारा ही घर और परिवार की उन्नति हो सकती है।

मातृभाषा में शिक्षा दयानंद सरस्वती के अनुसार शिक्षा का माध्यम मातृभाषा में होना चाहिए। जिससे बालक अपनी संस्कृति के बारे में ज्यादा से ज्यादा जान पाए। मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने से बालक अपनी मातृभूमि और संस्कृति के प्रति गौरव महसूस करता है और उसके नैतिक मूल्यों को बढ़ावा मिलता है। स्वामी जी के अनुसार बालक को प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में ही दी जानी चाहिए। जिससे बालक का बौद्धिक और मानसिक विकास तीव्र गति से हो सके। बालक स्वतंत्र चिंतन कर सके क्योंकि मातृभाषा  बालक के लिए सहज और बोधगम्य होती है।  मातृभाषा के रूप में  स्वामी जी ने हिंदी और संस्कृत का प्रबल समर्थन किया और बताया कि मातृभाषा में शिक्षा से ही बालक का मौलिक विकास संभव है।

**स्वामी दयानंद सरस्वती के शैक्षिक विचारों की वर्तमान में प्रासंगिकता**

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने शिक्षा को आजीवन तथा सतत चलायमान प्रक्रिया माना है। शिक्षा प्रदान करने का कार्य सर्वप्रथम घर से होता है ।उनकी दृष्टि में माता बालक की प्रथम गुरु होती हैं। माता के चरित्र से शिशु का चरित्र निर्दिष्ट, प्रभावित और विनिर्मित होता है। एक तरह से यह प्रक्रिया मातृगर्भ में आने के साथ ही प्रारंभ हो जाती हैं। वे इन्हीं कारणों का स्पष्टीकरण देते हुए बालक का प्रथम विद्यालय घर को, परिवार को और बालक की प्रथम गुरु माता को मानते हैं। वर्तमान युग में शिक्षा को बाल केंद्रित बनाया गया है। जिसका आधार मनोविज्ञान इस बात की पुष्टि करता है कि बालक के गर्भ में रहते हुए माँ जिन वस्तुओं, तथ्यों, रचनाओं, अधिगम अध्ययन कर  क्रिया करती है। उसका सीधा सीधा प्रभाव बालक पर पड़ता है। यह तथ्य वर्तमान शिक्षा प्रक्रिया के लिए प्रासंगिक माना जाता है

स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा सामाजिक विकास का लक्ष्य सामने रख उसी को शिक्षा के अंदर नियुक्त किया गया है उन्होंने समाज का ध्यान कुरुतियों पर आकृष्ट कर इनसे दूर रहने की सलाह दी। बालकों को शिक्षा में आचार विचार को परिष्कृत करने की आवश्यकता बताई गई है। स्वामी दयानंद जी कहते हैं कि शरीर समस्त उद्देश्यों को प्राप्त करने का सशक्त साधन है प्रारंभ से ही बालक बालिकाओं को स्वस्थता प्रदायक तत्वों के प्रति जागरूक करने की आवश्यकता बताई गई है। उन्होंने खानपान को उत्तम कर निरोग शरीर प्राप्त करने पर विशेष बल दिया है। शारीरिक व्यायाम से संबंधित अनेक क्रियाओं को प्रमुखता प्राप्त दी गई थी। वर्तमान शिक्षा पद्धति मुख्य रूप से

बालक के शारीरिक विकास पर बल देती है। वर्तमान समय में सभी विद्यालयों में प्रार्थना सभा में योग क्रियाएं कराई जाती हैं। जिनके माध्यम से बालक में स्मृति, ध्यान, चिंतन क्षमता आदि का विकास होता है। बालक शारीरिक विकास के साथ-साथ मानसिक विकास में भी पूर्णता प्राप्त कर सकता है।स्वामी दयानन्द के विचार उक्त वर्तमान परिस्थिति में शैक्षिक प्रक्रिया के अंतर्गत प्रासंगिकतापूर्ण है

शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान ग्रहण करना नहीं है बल्कि शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य बालक के अंदर उन क्षमताओं, आदर्शों व कर्तव्यों को सन्निहित करना है। जिनके द्वारा समाज में बालक को शिक्षित व्यक्ति के रूप में पहचान प्राप्त हो सके, क्योंकि समाजवाद उन्हीं तत्वों को ग्रहण करने पर बल देता है जो सकारात्मक और अनिंदनीय होते हैं। वर्तमान समय में सबसे बड़ी लड़ाई सम्मान के पक्ष की है क्योंकि आज केवल सम्मान शिक्षक का नहीं बालक का भी हैं। शिक्षक सम्मान देना एवं प्रतिक्रिया स्वरूप सम्मान प्राप्त करना दोनों कार्य बालक को प्रारंभ से ही सिखाता है। वर्तमान समय में एक अच्छे विद्यार्थी की पहचान में भी इस पक्ष को सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता है। अगर विद्यार्थी सभी का आदर करता है, शिक्षक द्वारा दी गई आज्ञा का पालन करता है तो उस बालक को अच्छे बालक की श्रेणी में रखा जाता है। इसी कारण वर्तमान समय में स्वामी दयानंद सरस्वती का यह सत्य प्रासंगिकतापूर्ण है

बालक के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षण में नैतिक शिक्षा ,वैचारिक विकास का उद्देश्य बहुत महत्वपूर्ण है, जहाँ चार सद्गुणों की व्याख्या की गई है। वे चार सद्गुण- परोपकार, सदाचार, सत्याचरण, सदाशयता है। इनके द्वारा बालक का नैतिक, चारित्रिक विकास संभव बताया गया है तथा इनके अभाव में उस विकास के क्रम की बाधक तत्वों का समावेश होना बताया गया है। शिक्षा द्वारा आंतरिक शुद्धि बालक के जन्म से ही प्रारंभ हो जाती है। वर्तमान समय में विद्यालयी शिक्षा में बालक को अनेक नियमों, प्रणालियों की पालना आवश्यक रूप से करनी होती है। जिनके द्वारा विद्यालयी शिक्षा तथा विद्यालय प्रक्रिया का सफल संचालन कर बालक के सर्वांगीण विकास के साथ साथ अध्ययन अध्यापन प्रक्रिया को सफल बनाया जाता है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने विद्या प्राप्ति के संबंध में छात्र और शिक्षक के संबंध में यह माना है कि दोनों के मध्य निकटता के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित होनी चाहिए। दोनों के मध्य आत्मीयता और व्यक्तिगत संबंध होंगे तभी शिक्षा का प्रचार प्रसार प्रभावी माध्यम से होगा। विद्यार्थी गुरु के निकट होना चाहिए किंतु अध्ययन अध्यापन के संबंध में अध्यापक द्वारा कोई शीतलता प्रदर्शित नहीं की जानी चाहिए। संक्षिप्त भाव में कहें तो छात्र और शिक्षक के बीच संबंध पिता पुत्र जैसी भावनाओं पर आधारित तथा विद्यार्थी के कल्याण के निमित्त होना चाहिए। शुद्ध भाव के साथ निष्पक्ष आचरण सिखाना, आध्यात्मिक शक्ति से विद्यार्थी को संपन्न करना, विद्यार्थियों की रुचि पर आधारित शिक्षा का विकास करना, कल्याण के लिए उनको समर्पित विकास की सीख देना आदि गुणों के द्वारा छात्रों का सर्वांगीण विकास करना ही शिक्षा एवं शिक्षण का उद्देश्य और लक्ष्य होना चाहिए। जिससे छात्र सफलता और उन्नति प्राप्त कर सके। वर्तमान शिक्षा पद्धति में छात्र के सीखने के लिए आवश्यक तत्व शिक्षण को ही माना जाता है। वर्तमान समय में संपूर्ण शिक्षा प्रक्रिया में स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचार पूर्णरूप से प्रासंगिकतापूर्ण है।

## निष्कर्ष

दयानंद सरस्वती का शैक्षिक दर्शन भारतीय समाज के पुनर्निर्माण और राष्ट्र को दिशा देने में एक महत्वपूर्ण योगदान देता रहा है। दयानंद सरस्वती के अनुसार शिक्षा केवल ज्ञानार्जन का साधन न होकर सम्पूर्ण व्यक्तित्व को विकसित करने का एक माध्यम है। शिक्षा व्यक्ति का नैतिक, आध्यात्मिक, मानसिक, शारीरिक और सामाजिक रूप से उत्थान करती है। वर्तमान समय में जब शिक्षा का व्यवसायीकरण हो रहा है, तब ऐसे समय में दयानंद सरस्वती के विचारों के अनुसार छात्रों में नैतिकता, संस्कार ओर मानवता का विकास करने के लिए मातृभाषा में शिक्षा, नैतिक मूल्यों पर बल, विज्ञान एवं प्रयोगशीलता का समावेशन, स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन वर्तमान की आवश्यकता है। इसलिए नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति में इन सभी का समावेश किया गया है। स्वामी जी ने वेदों की शिक्षा पर विशेष बल दिया, क्योंकि वेदो के सार्वभौमिक सिद्धांत शिक्षा को एक मजबूत आधार प्रदान करते हैं और नई आने वाली पीढ़ी को अध्यात्म से जोड़ते हुए नवाचारों की ओर भी प्रेरित करते हैं। वर्तमान शिक्षा पद्धति में जहां विद्यार्थियों पर केवल अकादमी शिक्षा हेतु दबाव रहता है, वैदिक शिक्षा के द्वारा बालक का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक चारो पक्षो का संतुलित रूप से विकास होता है। स्वामी जी ने स्त्री शिक्षा पर विशेष रूप से बल दिया। उनका मानना था कि यदि महिला शिक्षित होगी तो परिवार और समाज दोनों का उत्थान होने की प्रबल संभावना है। वर्तमान समय में भी स्त्री शिक्षा को विशेष बल देकर महिला सशक्तिकरण तथा लैंगिक समानता को बढ़ावा दिया जा रहा है जिससे देश को समग्र विकास की ओर अग्रसर करने का सफल प्रयास किया जा रहा है। वैश्वीकरण के दौर में जब पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है तब भारतीय मूल्यों को बनाए रखने के लिए दयानंद सरस्वती के शिक्षा दर्शन का अध्ययन एवं शिक्षा में प्रयोग अनिवार्य है जिससे हम भारतीय संस्कृति सांस्कृतिक जड़ों से जुड़े रहे और पुरातन और नवीन का संतुलन बनाए रखें । आज की शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगार पाना नहीं बल्कि समाज और राष्ट्र का उत्थान करते हुए भारत को विश्व गुरु बनाना है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 रुहेला, सत्यपाल एवं देवेन्द्र, "शिक्षा के समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य", सूर्या पब्लिकेशन, मेरठ।

2. पाण्डेय, रामशकल, "शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजिक आधार", विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

3. पचौरी, गिरीश, (2008), "शिक्षा के सामाजिक आधार", आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।

4. सक्सैना, सरोज, "शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार", साहित्य प्रकाशन, आगरा।

5. सक्सैना, एन.आर. स्वरूप तथा चतुर्वेदी, शिखा (2007), "उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक", आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।

6. अग्रवाल, एस. के. (2001), "शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त", मॉडर्न पब्लिशर्स, पी.एल. शर्मा रोड, मेरठ।

**7.**अग्रवाल, जे.सी., “शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्री आधार”, दोआबा पब्लिकेशनस्, दिल्ली।

**8.** चौबे, सरयू प्रसाद, “शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार”, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-**2**।

**9.** दास, एस. “भारतीय संस्कृति और दर्शन”, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।

**10.**जायसवाल, सीताराम “शिक्षा का सामाजिक आधार”, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ।

**11.** लाल, रमन बिहारी **(2004)**, “शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त”, रस्तौगी पब्लिकेशन्स, शिवाजी रोड़, मेरठ।

**12.**माथुर, एस. एस., “शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजिक आधार”, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-**2**।

**13.**महाजन, संजीव **(2008)**, “समाजशास्त्र”, राजलक्ष्मी पब्लिकेशन, मेरठ।

**14.** दिनकर, रामधारी सिंह : संस्कृति के चार आयाम

**15.** पाण्डे, रामशकल : शिक्षा दर्शन